साँझ

—जगदीश गुप्त

नयी कविता प्रकाशन

181ए/1 नाग वासुकि,इलाहाबाद-6

(संस्करण-1995)

❖

साँझ

मुझमें "आँसू" का काव्य-संसार एक संस्कार बनकर कितनी गहराई से व्याप्त हो गया था यह मुझे "साँझ" के रचना-क्रम में ज्ञात हुआ। प्रसाद जैसे कवि से एकात्मता का साहस, वह भी पंख खोलती अनभ्यस्त प्रतिभा के द्वारा किसी प्रारब्ध द्वारा ही संभव हो सका। लिखने के बाद मैंने उसे अपने में ऐसे सहेज लिया मानों वह एक प्रणाम था जो मैंने मानसिक प्रसाद-मंदिर के आगे विवश होकर अर्पित कर दिया। मुझे रचना का सुख तो मिला पर मुझमें रचना का अहंकार जाग्रत नहीं हुआ फलतः लगभग पैंतालिस वर्ष तक भाव-प्रबन्ध के रूप में वह अप्रकाशित ही बनी रही। अब प्रसाद जन्म-शती बीत जाने पर वे सोये संस्कार इस तरह जाग्रत हो उठे कि रचना छपकर सामने आ रही है। मैं उसे "आँसू" के कवि के प्रति एक रचनात्मक अभिनन्दन कहूँगा। तुलसीदास ने अभिनन्दन शब्द का प्रयोग समर्थन के अर्थ में ही किया है।

कविता की अनेक प्रेरणाओं में काव्याशंसा भी एक प्रेरणा हो सकती है यह मैंने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों के निजी अनुभव से जाना है। किसी रचना की श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता की प्रतीति दूसरे कवि के मन में तदनुरूप निजी प्रतिभा को उद्दीप्त करके प्रायः वैसे ही छंदात्मक संस्कारों से आत्मीयता ग्रहण करके रचना-प्रवृत्त होना एक आशंसा का भाव भी प्रकट करता है। ऐसी आत्मीयता एक कवि से दूसरे कवि को देशकाल और वय के व्यवधान को पार करके भी प्रकट हो जाती है। मेरे साथ कविता और चित्रकला का समन्वित रूप विशेष जाग्रत रहा है जिसे मैं अपना कह सकता हूँ। प्रसाद में भी मुझे चित्रात्मकता

सदैव आकृष्ट करती रही है। उनकी प्रारंभिक रचना 'चित्राधार' उनके उस मनोजगत् का परिचय देती है जो 'आँसू' और कामायनी की चित्रमयता से आपूरित रहा।

'आँसू' का भाव मेरी इस कृति में शशि और समुद्र की प्रतीकात्मकता के साथ प्रकट हुआ है जो मुझे आज भी प्रेरित करता है। मेरी 'स्वप्न भूमि' शृंखला के चित्र इसी भाव के द्योतक हैं।

शशि को पुतली में भर कर
जबसे मैंने दृग मींचे ।
कितने सागर लहराये,
भीगी पलकों के नीचे।

मनुष्य के चन्द्र-विजय की अकल्पनीय यात्रा की, जो इस युग की अद्वितीय उपलब्धि कही जायेगी। मेरे एक मुक्तक में यह बात पहले ही समाहित हो गयी थी। 'धर्मयुग' में यह प्रसंग छप चुका है।

सापेक्ष विश्व निर्मित है
कल्पना कला के लेखे।
यह भूमि दूसरा शशि है,
कोई शशि से जा देखे।

'चित्राधार' की नव प्रकाशित तथा "उपराष्ट्रपति" द्वारा प्रसाद मंदिर में विमोचित प्रति प्रसाद जी के आत्मज श्री रत्नशंकर प्रसाद से सद्भाव पूर्वक पाने का सुख मुझे प्राप्त हुआ है। प्रसाद जी के जन्म-शती वर्ष के अनन्तर, एक संकल्प के रूप में मेरी रचना प्रकाशित हो रही है तो मैं इसे विश्वनाथ का निर्माल्य ही मना रहा हूँ। गुप्त जी ने प्रसाद जी की विश्वनाथ का प्रसाद कहा ही है।

जयशंकर कहते कहते हम जब काशी को जायेंगे।
पर प्रसाद वह विश्वनाथ का कहो कहाँ से पायेंगे।।

बहुत कम लोग इस तथ्य से अवगत होंगे कि प्रसाद जी ने कामायनी के अंतिम सर्ग 'आनन्द' में उसी छंद का प्रयोग किया है जिसे पिंगल शास्त्री 'सखी' 'मानव', "हाकल" आदि नाम देते हैं पर मुझे उसके लिए 'आँसू' छंद कहना ही उचित लगता है।

जिन दिनों यह मुक्तक-रचना मेरे मानस में एक भाव प्रवाह के रूप में अवतरित हुई, मेरे भीतर एक ओर लय और छंद के अन्तर्निहित सम्बन्ध की खोज जारी थी दूसरी ओर चित्रकला और कविता के संस्कार संक्षिप्त रूप से उदित हो रहे थे।

ऐसे अनेक पद्य इस सांझ में समाहित है जिनमें मेरी उस मानसिक दशा का रचनाधर्मी प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। प्रारंभ से ही इसका आभास मिलने लगता है और अंत तक कविता निरन्तर चित्रों की सजीव सृष्टि करती चलती है। रंगो का वैभव, आकारों की कल्पना, प्रकृति के भीतर से शब्दार्थमयी कृति के रूप में प्रकट होती दिखाई देती है। इतने दशकों बाद भी यह रचना मुझे उपेक्षणीय नहीं लगी।

सृष्टि के व्यापक प्रसार में जो कुछ घटित होता है, मनोजगत उसका प्रतिबिम्ब ग्रहण करता रहता है। परिचित-अपरिचित प्रतीकों के माध्यम से अन्तरिक्ष को आपूरित करने वाली सृजनात्मकता मुझे अप्रत्याशित रूप से, अपने निकट ले आयी। समय का इतना व्यवधान भी मुझको उससे विरत नहीं कर सका।

प्रसाद ही नहीं, महादेवी, पंत और निराला भी मेरे अंतरंग में गूँजते रहे। बिजली और बादलों के भीतर मुझे 'मेघदूत' की कल्पना स्वयं साकार दिखायी दी। यक्षिणी भी अलकों की अलका में घिर गयी। पूर्व-मेघ और उत्तर-मेघ दोनों के कितने श्लोक मैंने ब्रजभाषा में अपने सुख के लिए रूपातान्तित किये जो बाद में छप भी गये। 'छंद-शती' में मेरी निजी कल्पनाएँ 'साँझ' के मुक्तकों में समायी देखी जा सकती है। मैं मानता हूँ कि सतत् प्रवाहित रचना-कर्म कभी खंडती नहीं होता। उसके लिये गहरी पहचान की जरूरत होती है चाहे वह कवि में हो या आलोचकों में।

प्रसाद जी के प्रति मैंने एक कविता उस समय लिखी थी जब 15 नवम्बर 1937 में वे दिवंगत हो गये थे। उसकी तीन पंक्तियों को विल्वदल की तरह अर्पित करके कृतार्थता का अनुभव कर रहा हूँ।

तुम वर्तमान की प्यास बुझाने को अतीत के तीर गये।
कर मूर्तिमान इतिहास युगों के अंधकार को चीर गये।
ओ वाणी के मधुमय प्रसाद ।

अंतिम पंक्ति को नया रूप दे रहा हूँ ।
ओ वाणी के प्रेरक प्रसाद।
(पूरी कविता अंत में दी जा रही)
इन शब्दों के साथ यह रचना सुधी जनों को समर्पित है।
विनयावनत
जगदीश गुप्त

❖

शशि को पुतली में भरकर
जब से मैंने दृग मींचे ।
कितने सागर लहराये,
भीगी पलकों के नीचे ।

उस रूप राशि को
जिसका स्वरूप कवि की
पलकों में युगों-युगों तक
समाया रहेगा।

❖

साँझ

जिस दिन से संज्ञा आई,
छा गई उदासी मन में।
ऊषा के दृग खुलते ही,
हो गई साँझ जीवन में।।1।।

मुँह उतर गया है दिन का
तरुओं में बेहोशी है।
चाहे जितना रंग लाये।
फिर भी प्रदोष दोषी है।।2।।

रवि के श्रीहीन दृगों में।
जब लगी उदासी घिरने ।
संध्या ने तम केशों में।
गूँथी चुन कर कुछ किरने।।3।।

जलदों के जल से मिल कर,
फिर फैल गये रंग सारे।
व्याकुल है प्रकृति-चितेरी,
पट कितनी बार सँवारे ।।4।।

किरनों के डोरे टूटे
तम में समीर भटका है।
जाने कैसे अम्बर में,
यह जलद-पटल अटका है।।5।।

रश्मियाँ जलद से उलझीं,
तिमिराभ हुई अरुणाई।
पावस की साँझ रंगीली,
गीली-गीली अलसाई ।।6।।

अधरों की अरुणाई से,
मेरी हर साँस सनी है।

उन नयनों की श्यामलता,
जीवन में तिमिर बनी है।।7।।

आँसू की कुछ बूँदो में,
सारा जीवन सीमित है।
पलकों का उठना-गिरना,
मेरे सुख की अथ-इति है।।8।।

प्रतिकूल हुये जब तुम ही,
तब कूल कहाँ से पाऊँ,
सुधि की अधीर लहरों में,
कब तक डूबूँ-उतराऊँ।।9।।

उस दिन तुमने हाँ कहकर,
निश्छल विश्वास दिलाया।
अब कितने अब्द बिताऊँ,
ले एक शब्द की माया।।10।।

बुझ सकी न प्यास हृदय की,
अधरों की मधुराई से ।
कुछ माँग रही है जैसे,
तरुणाई तरुणाई से।।11।।

तुम हो कि सतत नीरव हो,
संध्या की कमल-कली से ।
गुंजन भी छीन लिया है।
बंदी मधु-मुग्ध अली से।।12।।

इस विस्तृत कोलाहल में,
मैं पूछ रहा अपने से।
वे सत्य के हृदय के सारे,
क्यों आज हुये सपने से।।13।।

क्या उस सम्पूर्ण सृजन की,
निर्मम परिपूर्ति व्यथा थी।
जो कुछ देखा सपना था,
जो कुछ भी सुना कथा थी।।14।।

वीचियाँ विकल बिलखातीं,
बलखाती बहती धारा ।
अब भी मेरे मानस में,
बसता प्रतिबिम्ब तुम्हारा।।15।।

घन-छाया में सोती हो,
ज्यों श्रमित अमा की रातें।
वह केश-पाश बेसुध सा,
करता समीर से बातें।।16।।

क्या भूल गये हो निज को,
अपनी सीमा से बढ़कर।
चरणों को चूम रहे थे,
क्यों मुक्त केश सिर चढ़कर।।17।।

बँध गये स्वयं बँधन भी,
श्यामल सुषुमा श्रेणी में।
छवि सागर लहराते थे,
उस एक विषम वेणी में।।18।।

आनन-सरोज को तजकर,
अथवा अलियों की अवली ।
सारी निशि बंदी रह कर,
यौवन-प्रभात में निकली।।19।।

कौमुदी छीन लेने को,
चल पड़े सघन श्यामल घन।
शशि के मुख पर बिखरी थी,

किसकी अलकों की उलझन।।20।।

लख वंकिम भू-रेखा से,
निज धनु-प्रभाव भी धीमा।
मानों मनोज ने रच दी,
मुख-छवि असीम की सीमा।।21।।

गूँथी अबोध कलिकाएं
तारिका पाँति सकुचाई।
केशों की सघन निशा में,
चेतना स्वयं अलसाई।।22।।

उस अरुण सलज आनन में,
वे दो रँगराती आँखें।
किस तितली ने फैल दीं।
पाटल-प्रसून पर पाँखे।।23।।

कब दी बिखेर यौवन ने,
मुख पर कुंकुम-मंजूषा।
सकुचाई साँझ नयन में,
विकसी कपोल पर ऊषा।।24।।

कब नूपुर के कलरव से,
तन में तरुणाई जागी।
कब, कटि-केहरि के भय से,
भोली किशोरता भागी।।25।।

कब आँखों के आँगन में,
पुतली ने रास रचाया ।
अनुराग हृदय का सारा,
खिंचकर अधरों पर आया।।26।।

चुपके से किसने कह दी,
कानों में यौवन-गाथा।

तन सकुच देख कर मन ही—
मन में मन सकुच रहा था।।27।।

पलकों का गिरना, गिरि पर,
गिर गई तड़प कर बिजली।
अलकों का हिलना नभ में,
बदली ने करवट बदली।।28।।

उर कुसुम-हार का कंपन,
गति थी सशस्त्र मन्मथ में,
या मचल उठा हो कोई,
झरना पथरीले पथ में।।29।।

अनुराग चिह्न बनते थे,
पग-ध्वनि के आलापों से ।
लालिमा लिपट जाती थी।
उन गोरी पद-चापों से।।30।।

कलियों के कर से जैसे,
प्याली मरंद की छलकी।
मेरे प्राणों में गूँजी,
रुनझुन रुनझुन पायल की ।।31।।

स्वर्गंगा की लहरों में,
शशि ने छिप जाना चाहा।
जिस दिन प्यासे नयनों ने,
उस रूप-सिंधु को थाहा ।।32।।

किस रूप-सिंधु को मथ कर,
विधि ने मुख-इंदु निकाला।
विष के प्रभाव से जल कर,
हो गई श्याम कच-माला ।।33।।

नयनों के निधनंजय ने,
पी लिया हलाहल सारा ।
झलका श्यामल पुतली की,
ग्रीवा में बनकर तारा।।34।।

इस तरल गरल से भीगी,
उठ गई दृष्टि दिशि-दिशि को ।
दिन को सन्तप्त बनाया,
तमपूर्ण कर दिया निशि को।।35।।

मुख-इन्दु रश्मि-स्यंदन के,
चंचल चंचल मृग देखूँ।
यदि मिले देखने को तो,
युग-युग तक युग दृग देखूँ ।।36।।

दृग-समता को ले आऊँ,
आखें शशि के हिरनों की ।
चढ़ व्योम-बाम पर जाऊँ,
लेकर कंमद किरनों की ।।37।।

तारावलियाँ संचित कर।
दे डाली नवल प्रभा, या—
रवि को शशि को पिघला कर,
विरची विरंचि ने काया।।38।।

झलमल-झलमल होती थी,
वह देह-लता अम्बर में ।
ज्वालाएँ सी उठती हों
जैसे अमृत के सर में।।39।।

यौवन-प्रभात में मैंने,
उस कनक-लता को देखा।
ज्यों हरी दूब पर पड़ती,
सुकुमार धूप की रेखा।।40।।

विकसित सरोज बढ़ते हैं,
पर नहीं डूबते जल में ।
फिर बसे नयन रहते क्यों,
मेरे मानस के तल में ।।41।।

हो गई मदन के धनु की,
डोरी कुछ ढीली-ढीली।

भौहों को वंकिम करके,
जब चितवन चली रसीली ।।42।।

दशनावलियों के पीछे,
कुछ मुसकानें आ बैठीं ।
शबनमी-राशि में जैसे,
रेशमी रश्मियाँ पैठीं ।।43।।

यौवन-तरंग उठ-उठ कर,
खो जाती भुज-मूलो में ।
छवि-सुर-तरंगिनी बहती,
आकुल दुकूल-कूलों में।।44।।

अनबोली कली लजा कर,
छिप गई कहीं झुरमुट में ।
मुकुलित सौरभ की गाथा,
गूँजी कवि के श्रुतिपुट में।।45।।

उत्सुक नयनों से देखा,
सपनों का लिया सहारा।
पर मिला नहीं उस छवि का,
कोई भी कूल-किनारा ।।46।।

कोमल कोमल पंखुरियाँ,
लिपटीं थीं भोलेपन से।
विह्वल अलि अभिलाषा के,
उड़ चले अभागे मन से ।।47।।

चू पड़े अविकसित कलि पर,
कुछ ओस-बिदु आँसू के।
हैं पलकें विकल अभी तक,
जल बिखर गया, दृग चूके ।।48।।

ज्वाला सी उठी हृदय में,
अधरों के आलिंगन से ।
भूचाल आ गया सहसा
अन्तरतम के कंपन से।।49।।

उन बड़ी-बड़ी आखों में,
वे बड़ी-बड़ी दो बूँदे।
पड़ गई सोच में, कैसे,
मन के रहस्य को मूँदे।।50।।

उस मधुर सलोनी छवि को,
छूकर दोनों दृग पुलके।
सिहरी-सिहरी पलकों पर,
आँसू के श्रम-कण ढुलके।।51।।

चितवन की मधुराई का,
आस्वादन जलन सदृश था।
थी एक नयन में मदिरा,
दूसरे नयन में विष था।।52।।

दी खींच हृदय पर रेखा,
उन अनियारे नयनों ने ।
अन्तर के कोमल कोने,
छू दिये चपल पलकों ने ।।53।।

आकुल केकी-दल नाचा,
सुन मधुर-मधुर मृदु गर्जन ।
कर गई मेघ-मालाएँ,
जीवन का मुखर-विर्सजन।।54।।

कसमसा उठे आलिंगन,
हो बैठे नयन तरल से।
खिंच गये स्नेह के बंधन
कुछ और भीग कर जल से।।55।।

नभ देख रहा था भू के
यौवन की फुलवारी को।
भू देख रही थी नभ को,
नयनों की लाचारी को।।56।।

बढ़ती ही गई दिनों दिन,
दोनों की देखा-देखी।
सहसा नभ ने उर-पट पर,

करुणा की रेखा देखी ।।57।।

क्रीड़ा छिप गई क्षणों में,
पीड़ा ही मैंने जानी।
वह एक ठेस मीठी सी,
बन बैठी सजल कहानी।।58।।

मैं चौंक उठा अपने में,
जैसे कुछ खो बैठा था ।
केवल दो चार क्षणों में,
क्या से क्या हो बैठा था।।59।।

शशि को पुतली में भर कर,
जब से मैंने-दृग-मींचे।
कितने सागर लहराये,
भीगी पलकों के नीचे।।60।।

करुणा की गहरी धारा,
अभिलाषाओं की आँधी।
मैंने पलकों में रोकी,
मैंने सांसों से बाँधी।।61।।

कोमलता बनी कहानी,
मैं निष्ठुरता से हारा ।
किन शैलों से टकराई,
मेरे जीवन की धारा।।62।।

कर गया कौन नयनों से,
जल-फूलों की बौछारें।
बिछ गई मौन हो मग में,
मेरे मन की मनुहारें।।63।।

यह कौन हृदय में आकर,
कोमलता को मलता है।
छल छल छल छलक-छलक कर,
नयनों से बह चलता है ।।64।।

हो गया एक ही पल में,

अवसान रम्य जीवन का।
किससे टकराकर टूटा,
सब तारतम्य जीवन का।।65।।

कुछ बिखरीं कुछ कुम्हलाईं,
मुख म्लान हुआ आधों का,
सुधिके अधीर झोंकों में,
लुट गया विपिन साधों का ।।66।।

निश्वासों से गति पाई, ।
घिर गये दृगों में आकर।
करुणा के बादल बरसे,
यौवन गिरि से टकराकर।।67।।

जितनी विपदाएँ आई,
सब सहता रहा अकेले।
जीवन में पग रखते ही,
मैंने कितने दुख झेले।।68।।

पोंछे कब किसने आँसू,
अपने अदोष अंचल से ।
केवल प्रवंचना पाई,
उन मुसकानों के छल से ।।69।।

अब तो प्रतिपल पलकों को,
रहते हैं आँसू घेरे ।
फिर ही न सके फिर वे दिन,
जब से तुमने दृग फेरे।।70।।

जब से सौन्दर्य तुम्हारा,
मेरे नयनों से रूठा।
सुख की स्वतंत्र सत्ता का,
अभिमान हो गया झूठा।।71।।

जिस दिन मन की लहरों ने,
निष्ठुरता के तट चूमें।
पलकों में जो सपने थे,
सब डूब गये आँसू में ।।72।।

जिन मुस्कानों पर रीझा,
उनसे न कभी फिर पाया।
सैकड़ों बार धीरे से,
मैने मन को समझाया।।73।।

ठोकर सी लगी अचानक,
अन्तर के आधारों को ।
जब समझ न पाये तुम भी,
उन्मन, उन मनुहारों को ।।74।।

भयभीत हो उठीं साँसें,
मन का कण-कण थर्राया।
अपना सब कुछ देकर भी।
जब तिरस्कार ही पाया।।75।।

मत मेरी ओर निहारो,
मेरी आँखें हैं सूनी ।
फिर सुलग उठेंगी साँसें,
फिर धधक उठेगी धूनी।।76।।

धीरे-धीरे होता है,
उर पर प्रहार आँसू का।
नभ से कुछ तारे टूटे,
बँध गया तार आँसू का।।77।।

तटहीन व्योम-गंगा में,
तारापति-तरनी तिरती।
तारक बुदबुद उठते हैं,
पतवार किरन की गिरती।।78।।

छिप गया किसी झुरमुट में,
मेरे मन का यदुवंशी।
करुणा-कानन में गूँजी,
आकुल प्राणों की वंशी।।79।।

स्वर-स्वर्गंगा लहराई,
उर-वीणा के तारों में।

खो गई हृदय की तरणी,
लहरीली झँकारों में ।।80।।

सासों से अनुप्राणित हो,
कोमल-कोमल स्वर-लहरी।
कानों के मग से आकर,
सूने मानस में ठहरी ।।81।।

चंचल हो चली उँगलियाँ,
छिद्रान्वेषण करने को ।
पर नाच उठीं जाने क्यों,
मुरली का मन हरने को।।82।।

आगत की स्वर-लहरी में,
झलके अतीत के आँसू।
किसने तारों को छेड़ा,
आगये गीत के आँसू ।।83।।

कुछ डूब गये थे तारे,
छवि-धारायें उर्मिल थी।
रजनी की काली आँखें,
हो चली तनिक तन्द्रिल थी।।84।।

दुख कहते हैं, पग-पग पर,
करुणा का सम्बल देंगे ।
जीवन की हर मंजिल पर,
दृग कहते है, जल देंगें ।।85।।

आशा प्रदर्शिका बनकर,
करती निर्देश दिशा का ।
मैं सोच रहा हूँ— चल दूँ
ज्यों ही हो अन्त निशा का ।।86।।

कोलाहल-मय जगती के,
त्यागे आह्वान घनेरे ।
फिर भी एकाकीपन में,
मुझको मेरे दुख घेरे।।87।।

काली-काली रजनी में,
काले बादल घिर आये ।
या बुझे हुये सपने हैं,
नभ के नयनों में छाये।।88।।

चाँदनी पी गई आँखें,
छलके पलकों के साथी।
माधुरी अधिक थी विधु में,
या सुधि में अधिक सुधा थी।।89।।

प्यासी पलकों पर उतरी,
पूनो के शशि की किरने।
धुल-धुल कर पिघल-पिघल कर,
फिर लगीं बिखरने, गिरने।।90।।

खो गया गगन पलकों में,
पुतली पर तम की छाया।
धीरे-धीरे नयनों के —
तारों में यदि चाँद समाया।।91।।

विधु को छूने के पहले,
पड़ दृष्टि तारों पर।
पी सकी अमृत बेचारी,
पग रखकर अंगारों पर।।92।।

अन्तर की तरलाई में,
तारक-समूह तिर आया।
पुतली के अतल तिमिर पर,
छवि-छाया पथ की छाया।।93।।

फिर तिमिर-चिकुर चिर चंचल,
अंचल छू उठे दिशा का ।
भर गया गगन-गंगा से,
सीमित सीमंत निशा का।।94।।

विषमय विषाद में उर के,
डूबी है अमृत-कलाएँ ।
उज्जवल मयंक के मुख पर,

काली कलंक-रेखाएँ।।95।।

अगणित परिवार व्यथा के,
मेरे प्राणों में पलते।
मैं मोमदीप हूँ जिसके,
जलने से अश्रु निकलते।।96।।

निर्दोष-निसर्ग निलय में,
चिर तिमिर-ज्योति की माया।
तुम बढ़े दीप के आगे,
हो चली दीर्धतर छाया।।97।।

रजनी-प्रकाश के मुख पर,
बदली ने अंचल डाला।
चाँदनी तनिक सकुचाई,
हो गया गगन कुछ काला।।98।।

किरनों ने बादल-दल से,
जब आँख-मिचैनी खेली।
भावना मिलन की मन में,
बन बैठी विरह-पहेली।।99।।

मिलनातुर छाया पथ में,
गतिशील रजनि जब होती
तब टूट-टूट अम्बर से,
गिरते तारों के मोती।।100।।

उस दिन मैं नभ-गंगा के,
तट से निराश फिर आया।
उस दिन मैं शशि के मुधुमय,
घट से निराश फिर आया।।101।।

लेकिन मेरे फिरते ही,

फिर गई नजर अम्बर की,
सुख शरद-निशा के सिर से,
सारी तुषार की सरकी।।102।।

तारों की उज्जवल लिपि में,
निशि ने निज दुख लिख डाला।
पर मेरी दुख-लेखा का,
अक्षर-अक्षर है काला।।103।।

देखा है कोई सपना,
नभ की पलकें भारी हैं।
वह कौन बिंदु था जिससे,
तारावलियाँ हारी हैं।।104।।

वह कैसा आलिंगन था,
जिस पर ऊषा मुस्काई।
अधरों का छूना-छूना,
निशि ने हिमराशि लुटाई।।105।।

नयनों ने जैसे कोई,
उत्सुक उत्सव देखा हो।
श्यामल पुतली के ऊपर,
बन गई एक रेखा हो।।106।।

अमृत की प्यासी आँखें,
मुख छवि तकती घूमेंगी।
मानस की कोमल लहरें,
सुकुमार चरण चूमेंगी।।107।।

सुरधनु सी उन बाँहों को,
भुज-पाश रहेगें घेरे ।
आओ भी तो पलभर को,
पावन-प्रदेश में मेरे।।108।।

तुम हो, तम हो, निर्जन हो,
सौन्दर्य-सुधा रस बरसे।
कुसुमायुध वेध रहा हो,
अंतर केशर के शर से।।109।।

रजनी के अन्तिम क्षण में,
चुपके-चुपके ऊषा बन।
तुम कौन स्वप्न में आये,
भर गये दृगों में हिमकन।।110।।

उस क्षण तुमको पाते ही,
जल होकर बहा समर्पण।
कितने दिन इन प्राणों में,
अकुलाता रहा समर्पण।।111।।

सौ बार समय-सागर में,
लय होंगे साँझ-सबेरे।
तुम गिन न सकोगे फिर भी,
धड़कने हृदय की मेरे।।112।।

सिर पर भौरों सी काली,
दुख की छाया गहरी थी।
सुमनावलियाँ रोती थीं।
आँखों में ओस भरी थी।।113।।

झुलसी थीं उत्पीड़न से,
पंखुरियाँ आतप-मारी।
जलकण बन ढलक गई थीं,
सौरभ की सिसकन सारी।।114।।

आँसू-शबनम के कन में,
ढालते अपरिमित मद को ।
तुम कौन किरन से आये,
रंग गये उदार जलद को।।115।।

मच गया विकल-कोलाहल,
रजनी के अन्तःपुर में ।

किरनों की कोमल लपटें,
जब उठीं तिमिर के उर में।।116।।

ज्यों ही ऊषा तिर उतरी,
धुँधली सी क्षितिज पटी पर।
नवनीत-श्वेत सुमनों की,
मधु-वृष्टि हुई अवनी पर।।117।।

आँसू-श्रमकण से बोझिल,
पलकों के पंख पसारे।
उड़ गये नयन-नीड़ों से,
सपनों के विहग बिचारे ।।118।।

निशि ने श्लथ-केश समेटे,
नत नयन-कुमुद सकुचाये।
ऊषा ने अरुणांचल से,
तारों के दीप बुझाये।।119।।

मेरे प्रसुप्त जीवन में,
आई जागृति की बेला।
अधमुँदे दृगों से देखा,
मैंने सुकुमार उजेला।।120।।

नन्हीं-नन्हीं बूँदों से,
शीतलता बिखर रही थी।
निर्मल जल से धुल-धुल कर,
हरियाली निखर रही थी।।121।।

झुक गई दूब की पलकें,
आँसू का भार सम्हाले।
पागल समीर ने आकर,
सब मोती बिखरा डाले।।122।।

धीरे-धीरे ऊषा ने,
नीरज की आँखें खोलीं।
पंखों को मुखर बनाकर,
कुछ भ्रमरावलियाँ बोलीं।।123।।

हिल उठे सनाल जलज-दल,
हो गया सलिल लहरीला।
गिर इन्दु-बिन्दु ने सर में,
कर ली समाप्त निज लीला ।।124।।

अवशेष चार-छै बूँदें,
जो भी थीं पंखुरियों पर ।
चुन लिया उन्हें चुपके से,
रवि की किरनों ने आकर।।125।।

मैं पूरित-पुलक पुलिन से,
सब कौतुक देख रहा था।
दृगजल की नश्वरता को,
शबनम में लेख रहा था।।126।।

बीचियाँ चपल आ आकर,
छू जाती थीं चरणों को |
मैं मसल उठा आँसू से,
भीगे कुछ धूलि कणों को।।127।।

जब एक-एक कर नभ से,
सब तारक खिसक रहे थे।
सूनी प्रभात-बेला में,
सुख-सपने सिसक रहे थे।।128।।

आहों की धूमिल रेखा,
हो गई धवल धुल-धुल के ।
नयनों से आँसू बनकर,
जब पुलक हृदय के ढुलके।।129।।

युग-युग से रहे समाये,
इस अश्रुलीन पुतली में।
फिर भी तुम जान न पाये,
दृग हैं कितने पानी में।।130।।

किसने निज गुन से बाँधी,
कल्पना-विहग की पाँखें।
खुल गई देखकर किसको,

मेरे सपनों की आँखें ।।131।।

रजनी भर रहा निरखता,
मैं दोनों पलक पसारे।
कब कौन कहाँ से आया,
रच गया ओस कन सारे।।132।।

तुम रमते रजत-रजनि से,
बेसुध छवि की छलकों में।
फिर इन्दु-बिन्दु बन जाते,
जाने क्यों इन पलकों में।।133।।

परिमल-जल से बोझीली,
पंखुरियाँ झुकी हुई थीं।
ढुलकी-ढुलकी कुछ बूँदें,
कोरों पर रुकी हुई थीं।।134।।

वे भरे-भरे से आँसू,
वे रँगे-रँगे से कोये।
अरुनाई के डोरों में,
किसने जल-फूल पिरोये।।135।।

ऊषा के स्मिति-इंगित की,
गति से हिल उठीं हिलोरें ।
किरनों के अनुशासन में,
सन गई जलद की कोरें।।136।।

मेरे प्रसुप्त पौरुष में,
तुम प्रकृति बने मुसकाये।
जग उठा स्नेह, सपनों से,
मैंने दृग-द्वार सजाये।।137।।

कुछ सूख चली आँखों को,
आँसू अथाह दे जाता ।
संदेश स्निग्ध सुमनों का,
जब सुरभिवाह दे जाता।।138।।

वनमाली ! इन्हें न छेंड़ें,

देखो समीर के झोंके।
ये सुमन नहीं हैं मन हैं,
अनबोली लतिकाओं के ।।139।।

पायें तो कर पल्लव से,
सबके सब कुसुम छिपालें।
उल्लास हृदय का सारा,
कैसे कह डालें डालें।।140।।

सब रूप-राशि संसृति की,
अलकावलियों में मूँदी।
डालों ने अपनी वेणी,
मधु-मंजरियों से गूँदी।।141।।

कुसुमों की निष्ठुरता से,
सिहरन है विश्वासों में ।
यह पवन नहीं है, गति है,
उपवन के निश्वासों में।।142।।

सौरभ-स्वर में कहती सी,
जैसे कुछ अपने जी की।
नूपुर सी बज उठती है,
प्रत्येक कली जूही की।।143।।

परिमल की विमल-विभा से,
निस्पंद हो रहा नभ है।
इतने ससीम सुमनों में,
कितना असीम सौरभ है।।144।।

कलियों की पलकें डोलीं,
झुक गई लजीली डाली।
छवि-तन्द्रिल तरुणाई में,
हो गई सफल शेफाली।।145।

इसके झोंको से उलझें,
उसकी साँसों के श्रमकण।
तुम मुझसे मिलीं, विसुध हो,
मिलते ज्यों सुरभि-समीरण।।146।।

कब से गति-गहन विजन में,
फिरती थी मारी-मारी ।
रख सिर समीर के उर पर,
सो रही सुरभि बेचारी।।147।।

गर्वित हो सुरभि न कैसे,
अपने सौभाग्य प्रचुर पर।
निखरी प्रसून के उर पर,
बिखरी समीर के उर पर।।148।।

धीरे से पल्लव हिलता,
धीरे से हिमकण ढलते।
धीरे से हृदय मचलता,
धीरे से अश्रु निकलते।।149।।

धीरे से हो जाता है,
सारा जीवन-घट रीता।
धीरे से मुरझा जाती,
तरुणाई नव-परिणीता।।150।।

खिल उठा मुकुल-दल सुरमित,
छवि अखिल भुवन में छाई।
साकार हो गई सहसा,
जैसे तरु की तरुणाई।।151।।

कामिनी-कुंज में खोई,
रजनी की सारी माया।
तारक प्रसून बन बैठे
द्रुमदल में तिमिर समाया।।152।।

जितना वैभव जो चाहे,
कामिनी-विटप से लेले।
हीरक से सुमन सलोने,
मरकत से दल अलबेले।।153।।

जाने कितनी कोमल हैं,
चू पड़ती तनिक छुये से |

हिम-धवल पाँच पाँखुरियाँ,
शर पंच पंचशर के से।।154।।

हो गये पार अन्तर के,
मैं देख रहा भूला सा।
मेरी साँसों-साँसो में,
कीमिनी-कुंज फूला सा।।155।।

सुधियों में बेसुध होकर,
मैंने सब सुधबुध खोई।
जीवन की गीली गाथा,
कामिनी-कुंज में सोई।।156।।

पीली पराग कणिकाऐं,
किंजल्क-जाल में उलझीं।
इस उलझन के चिंतन से,
चिंता की अलकें सुलझी।।157।।

लिपटी जाती हैं तरु से,
बल खा-खाकर बल्लरियाँ।
रहती हैं पर फैलाये,
ऊपर सौरभ की परियाँ।।158।।

सौरभ की चलाचली में,
यह मौन व्यथा भर लाये।
किसी तप्त श्वास को छूकर,
कामिनी-कुसुम कुम्हलाये।।159।।

सूना मन, सूना जीवन,
सूने दिन, सूनी रातें।
सूनी-सूनी आँखों में,
छाई दुख की बरसातें।।160।।

धुँधले अतीत की स्मृति में,
खोया-खोया सा निश्चल।
शिखरों पर टिककर जैसे,
कुछ सोच रहा है बादल।।161।।

कल्पने ! वहाँ पर ले चल,
स्वर जहाँ निखर जाता हो।
रश्मियाँ नृत्य करती हों,
तारक-समूह गाता हो।।162।।

नीरव नीरद पट पर,
बूँदों के घुँघुरू छमकें।
संगीत स्वप्न लखता हो,
चंचल चपलाएं चमके।।163।।

रिमझिम-रिमझिम पावस का,
कल जल-तरंग बजता हो।
लय में लय हो जाने को,
नव इन्द्र-धनुष सजता हो।।164।।

पलकों के शिथिल क्षितिज पर,
दिन-रात जलद छाते हैं।
वरदान उमड़ आते हैं,
अभिशाप बरस जाते हैं।।165।।

निर्मम हिम-शैल-शिखर से,
जब भी जाकर टकराते।
मेरी करुणा के बादल,
सब चूर-चूर हो जाते।।166।।

विक्षुब्ध प्रलय-प्लावन में,
आँसू का जलधि विकल हो।
पलकों के नीचे जल हो,
पुतली के ऊपर जल हो।।167।।

नभ में निरीह तिरता है,
लेकर समीर की पाँखें।
बूँदे बादल के आँसू,
बिजली बादल की आँखें।।168।।

वह कौन अमृत आशा है,
किसकी साधना अमित है।
बिजलियाँ सतत डसती हैं,

फिर भी पयोद जीवित है।।169।।

डगमग पग गगन-डगर में,
झूमतीं निगाहें भोली।
कादम्ब पिये आती हैं,
कादम्बिनियों की टोली।।170।।

जिनसे दृग भर लेने को,
अमरों के हृदय तरसते।
बिजली की मुस्कानों से,
सोने के फूल बरसते।।171।।

अन्तर है विसुधि-युगों का,
हैं कोसों दूर बसेरे ।
फिर भी इस सघन निशा में,
कितने समीप तुम मेरे।।172।।

तुम चले लहर कर जैसे,
आ गई बाढ़ यौवन में,
भर गया दृगों में पानी,
कितनी बिछलन थी मन में।।173।।

कल्पना सिहर जाती है,
उठती है पीर हृदय में।
बिजलियाँ जलद में जैसे,
चुभते हैं तीर हृदय में।।174।।

मैंने छवि की छाया के,
संकेत हृदय पर आँके।
बादल-दल के पीछे से,
तुम कौन तड़ित से झाँके।।175।।

पीड़ा से रोते-रोते,
पड़ गये सभी रँग फीके।
बादल-समूह पर होते,
नित कशाघात बिजली के।।176।।

मिल गई धूल में धरती,

मस्तक झुक गये द्रुमों के ।
हिल उठी दिशाएँ सारी,
थे क्रुद्ध पवन के झोंके।।177।।

इतना जल ले आई हैं,
कितने लोचन कर छूँछे।
कल-कल करती सरिता की,
लहरों से कोई पूँछे।।178।।

धरती पर उजले जल के,
कन छलक-छलक कर ढलके।
फिर से पावस भर लायी,
सुरमई कलश बादल के।।179।।

जब नयन सरल स्वीकृति दें,
ढीली पड़ जायें भौंहे ।
अपने असत्य के पीछे,
छिपकर रह जायें सौहें।।180।।

फिर भी न तुम्हें मैं देखूँ,
आखिर यह कैसी बातें।
जायेंगी बिन बरसे ही,
क्या यह रस की बरसातें।।181।।

वह कौन गगन में प्रतिदिन,
दामिनी-कवच कस आता।
ले इन्द्र-धनुष हाथों में,
बूँदों के तीर चलाता।।182।।

घायल है सारी धरती,
छिद-छिद कर जल-वाणों से।
मैं सब कुछ देख रहा हूँ,
अपना मन मौन मसोसे।।183।।

पंथी हूँ, पथ भूला हूँ,
जीवन की दोपहरी में।
जाने दो दोपल पलकें,
लग, दृग-छाया गहरी में।।184।।

वरुनी के कुंज कटीले,
फिर भी कितने सुखदाई।
पुतली से छलक रही है,
जैसे शीतल तरलाई।।185।।

काजल की काली रेखा,
जल-भरी बदलियों जैसी।
श्रम, तृषा, जलन, हरने को,
घिर-घिर आती है कैसी।।186।।

अरुणाई के मृदु डोरे,
डूबे रँग में ऊषा के।
सुलझा न सका हूँ मैं भी,
जिन में निज को उलझा के।।187।।

जगमग-जगमग हो उठता,
किसकी छवि से उर-आसन।
तुम कौन किया करते हो,
मेरी साँसों पर शासन।।188।।

आदेश-दृष्टि उठते ही,
शत-शत दृग झुक जाते हैं।
ये बंदी प्राण बिचारे,
दिन-रात विरुद गाते हैं।।189।।

शापित हैं, विधि कृत कहकर,
सह ही लेंगें दुख सारा।
तुम सुखी रहो, निश्चल हो,
युग-युग तक विभव तुम्हारा।।190।।

मैं बैठ गया अवनी पर,
दुख में खोया-खोया सा।
तरु-छाया थी शीतल या,
कोई सपना सोया सा।।191।।

पग-पग पर मैंने अपने,
चंचल प्राणों को रोका।

पर बहा ले गया बरबस,
उनकी साँसों का झोंका।।192।।

यह किस प्रदेश की भूली,
भाषा सिखते रहते हैं।
मुख पर आँसू-अक्षर से,
दृग क्या लिखते रहते हैं।।193।।

सारे आँसू-कन सूखें,
पलकें रुक कर झुक जायें।
जब दोनों नयन अभागे,
पथ देख-देख पथरायें।।194।।

तब दबे पांव तुम आना,
चुपचाप चुराने साँसें।
जायेंगी निकल स्वयें ही,
तन से समीर की फाँसे।।195।।

यौवन की आतुरता में,
जो भूल कभी हो जाती।
जीवन भर उसकी सुधि से,
दहका करती है छाती।।196।।

तज कर यथार्थ की कटुता,
कैसे भविष्य को आँकूँ।
अपनों की निर्ममता को,
कब तक सपनों से ढाँकूँ।।197।।

शत झंझावात प्रलय के,
सोते हैं इसी हृदय में।
इतने कोमल कंपन भी,
होते हैं इसी हृदय में।।198।।

जीवन की समरसता को,
हम कितना और सराहें।
अधखुले तुम्हारे लोचन,
अधखिली हमारी चाहें।।199।।

जाने कितनी कोमलता,
मेरे उर में संचित है।
पर निठुर तुम्हारा वैभव,
अब भी उससे वंचित है।।200।।

तुम हो तटस्थ गिरिमाला,
मैं मधु-निर्झर निर्मल हूँ।
जितने ही तुम निष्ठुर हो,
उतना ही मैं कोमल हूँ।।201।।

विश्वास करो तुम मेरी,
निश्वासों के क्रंदन पर ।
विश्वास करो तुम मेरी,
पीड़ा के भोलेपन पर ।।202।।

डालो न हँसी की चादर,
अभिलाषाओं के शव पर।
विश्वास करो तुम मेरे,
निश्वासों के शैशव पर।।203।।

अधरों में मृत्यु सजाकर,
जीवन को बहलाऊँगा।
दोगे यदि मुझे गरल भी,
चुपके से पी जाऊँगा।।204।।

तुम मौन देखते रहना,
किंचत भी तड़प न होगी।
निश्चलता अचल बनेगी,
जैसे समाधि में योगी।।205।।

रजनी की निर्ममता से,
दिन के सुकुमार मिलन को।
यह साँझ सतत गूँथेगी,
किरनों से हास-रुदन को।।206।।

पुतली के घिरे तिमिर पर,
संध्या की आभा छाई।
पीली पलकों के नीचे,

कितनी लालिमा समाई।।207।।

यौवन के ज्वाला-वन में,
लपटों की ललित लतायें।
अंगार-कुसुम बरसाकर,
भय है, न कहीं बुझ जायें।।208।।

जीवन की क्षण भंगुरता,
छू-छू कर हँसते-हँसते।
ऊषा की दीपशिखा पर,
तारों के शलभ झुलसते।।209।।

सीमित असीम हो उठना,
अभिलाषाओं का क्रम है,
चिर प्यास अमर जीवन है,
संतोष एक विभ्रम है।।210।।

झुक गये शिथिल दृग दोनों,
रुँध गई कंठ में वाणी।
अधरों का मधुर परस-रस,
कर सका न मुखरित प्राणी।।211।।

कोई न जिसे पढ़ पाया,
ऐसी रहस्य लेखा हो,
मेरी पीली पीड़ा में,
तुम एक अरुण रेखा हो।।212।।

भोले से भ्रू-भंगों में,
सुख की अभंग आशा थी।
उन मीठी मुस्कानों में,
जीवन की परिभाषा थी।।213।।

मेरे प्राणों के पथ पर,
सबने अंगार बिखेरे।।
कोई न मिला जीवन में,
पल भर जो प्यार बिखेरे।।214।।

जीवित जिसकी साँसों में,

मृत मानवता का स्वर हो।
तुम भी न जिसे छू पाये,
मेरा अस्तित्व अमर हो।।215।।

वरुनी-मूलों में उलझे,
श्रमसीकर करुण-कथा के।
दृगद्वारों पर बाँधे हैं,
या वन्दनवार व्यथा के।।216।।

वह पहली रीझ दृगों की,
इति-इतिहासों का अथ है।
रस-सिद्धि प्राप्त करने में,
सौन्दर्य-साधना पथ है।।217।।

वे छवि-छलनाऐं लेकर,
सुधि की पतवारें कर में,
तिरती हैं स्वर्ण-तरी सी,
मन के प्रशान्त सागर में।।218।।

स्वीकृति नकार बन बैठी,
किंचित संशय हरने में।
क्या मिला तुम्हें बतलाओ,
विश्वासघात करने में।।219।।

कर सका कौन आर्कषण,
सम्पूर्ण प्रलुब्ध हृदय को,
कोई न शान्ति दे पाया,
मेरे विक्षुब्ध हृदय को।।220।।

सुन सको अगर तो सुन लो,
मेरे अन्तर की बातें।
कहता है कहीं किसी से,
कोई निज घर की बातें।।221।।

मुरझाये किंजल्कों में,
किंचित मकरंद न छोड़ा।
तुमने रक्तिम हाथों से,
सुमनों का हृदय निचोड़ा।।222।।

अब इन्हें कुचल भी डालो,
गज-गतिशील पंकज से।
सम्भव है फिर जी जायें,
छूकर पावन पद-रज से।।223।।

जिसकी सुधि-सुधा छलकती,
रहती नित पलकों पर है।
उसके तन की छाया भी,
देखना आज दूभर है।।224।।

किरनों का आसव पीकर,
मद के झोंकों में झूँमू।
बादल-दल के पीछे से,
चुपचाप चाँद को चूँमू।।225।।

पागलपन के धागों में,
सारी तरुनाई बुन दूँ।
चंदा की चल पलकों पर,
चुपके से चुम्बन चुन दूँ।।226।।

स्वीकृति-संकेत तुम्हारे,
मेरे समीप तक आये।
घन अंधकार में जैसे,
कोई प्रदीप जल जाये।।227।।

फिर से निर्वासन पाये,
अवसाद-यक्ष उर थामें।
बन कर कुबेर रम जाऊँ।
इन अलकों की अलका में।।228।।

फिर विरह-क्षीण क्षण-क्षण। हो,
करुणा-यक्षिणी-बिचारी।
संदेश स्नेह का लाये,
मन-मेघदूत बलिहारी।।229।।

प्राणों की पुरवाई में,
जब कसक चोट उठती है।

वेदना पुरानी कोई,
बरबस कचोट उठती है।।230।।

जब नत-नयनों में सोकर,
कोई सपना जगता है।
तब मन के भीतर-भीतर,
जाने कैसा लगता है।।231।।

पलकों के चपल पुलिन में,
बहती अबोध जल-धारा।
कर गया क्षार जीवन को,
निर्मम लावण्य तुम्हारा।।232।।

जीवन-प्रवाह गतिमय हो,
बह चलें व्यथाऐं निर्मल ।
धरती को रसमय कर दे,
मेरी करुणा के बादल।।233।।

विस्तृत नीरद बन-बनकर,
अवनी-अम्बर को छालूँ।
सारी संसृति के दुख को,
पलकों की ओट छिपालूँ।।234।।

खो जाये श्रम-विह्वलता,
अरमानों की माया।
पलभर को जग सो जाये,
मेरे दुख की छाया में।।235।।

पड़ जाय क्षार में साँसे,
जीवन की बौछारों से।
नन्हा सा हृदय कणों का,
सिंच जाये रसधारों से।।236।।

तिलमिला उठें सब तारे,
डगमगा उठे भूमंडल।
उल्काओं के ताण्डव से,
हो खण्ड-खण्ड आखण्डल।।237।।

जड़ता समीर में आये,
चाहे ध्रुव भी चंचल हो।
साधना-पंथ पर फिर भी,
मेरा मन अडिग-अचल हो।।238।।

पल भर जिसके दर्शन से,
प्राणी निज व्यथा भुला ले।
कमनीय कामना मेरी,
कल्पना-लोक रच डाले।।239।।

रसभीनी झंकारों से,
तारों का हृदय हिलाऊँ।
इस विकल विश्व-वीणा में,
स्वर भरा तार बन जाऊँ।।240।।

प्रत्येक हृदय स्पंदित हो,
मेरे कंपन की गति पर,
छाले मेरी करुणा का,
संदेश देश-देशान्तर।।241।।

सापेक्ष विश्व निर्मित है,
कल्पना-कला के लेखे।
यह भूमि दूसरा शशि है,
कोई शशि से जा देखे।।242।।

हो गई धूल, निज छवि को,
फिर भी न खो सकी पृथिवी।
संसृति की पंखुरियों पर,
है बूँद ओस की पृथिवी।।243।।

देखता शून्य से यकटक,
मेरा विचार भूखा सा।
माँगती तृप्ति-मधुरियाँ,
मेरी अतृप्त जिज्ञासा।।244।।

यह गोल-गोल पिंडो से,
पूरित खगोल कैसा है ?
शशि के पीछे तारे हैं,

तारों के पीछे क्या है ? ।।245।।

मानव शरीर में कैसे,
सौन्दर्य-सृष्टि होती है।
हत-हृदय हिला देन में,
क्यों सफल दृष्टि होती है।।246।।

किसकी किरणों का यौवन,
है इन्द्र-धनुष में झलका।
किससे परमाणु बने हैं,
क्या है उद्गम पुद्गल का।।247।।

फल-फूल-छाल-दल देकर,
भु-सुरतरु-बन जाता है।
किससे विकास पाते ही,
अंकुर तरु बन जाता है।।248।।

अंगों में भस्म रमा कर,
झूमती पवन चलती है।
किससे वियोग में प्रतिपल,
धूमिल पावक जलती है।।249।।

वसुधा है विसुध, हृदय में,
सुधियों का शासक पैठा।
किस पर सर्वस्व लुटाकर,
आकाश शून्य बन बैठा।।250।।

जल के उज्जवल कण किसकी,
मुसकानों से चालित हैं,
वह कौन शक्ति जिससे,
यह पंचतत्व पालित हैं।।251।।

•

'प्रसाद' के स्मृति दिवस पर

डा0 जगदीश गुप्त

ओ वाणी के मधुमय प्रसाद !
तुम वर्तमान की प्यास बुझाने को अतीत के तीर गए।
कर मूर्तिमान इतिहास, युगों के अंधकार को चीर गए।
गुँथ गए तुम्हारे एक सूत्र में भूत-भविष्यत्-वर्तमान।
इतनी विस्तृत हो गई दृष्टि, हो गए तुम्हें वे सब समान।
तुम भूतकाल की सीमाओ के स्रष्टा बनकर झूम उठे।
तुम वर्तमान में भी भविष्य के द्रष्टा बनकर झूम उठे।
है गूँज रहा अब तक निनाद ।
ओ वाणी के मधुमय प्रसाद !
भावों का 'झरना' फूट पड़ा, उर में करुणा की 'लहर' उठी ।
जो घनी-भूत पीड़ा मस्तक में छाई थी, वह घहर उठी ।
श्रृंगार हो गया 'आँसू' की धारों से धुल-धुलकर पवित्र।
लेखनी तूलिका बनी और बन गए अमित सौन्दर्य-चित्र।
ओ कवि ! तुमने छू दिया तनिक तो वाणी वरदायिनी बनी।
मनु में मानवता जाग उठी जब श्रद्धा 'कामायनी' बनी ।
तब तुम महान हो निर्विवाद ।
ओ वाणी के मधुमय प्रसाद !
उद्देश्य तुम्हारा श्रान्त भवन में टिक रहने की चाह नहीं।
तुम पहुँच गए थे उस सीमा तक, जिसके आगे राह नहीं।
प्रतिभा की किरणें फूट पड़ीं, जगमग-जगमग हो उठा 'इन्दु'।
तुम अमर बने नागरी-भाल के उज्जवल अमल सुहाग-बिन्दु।
पलकर 'रहस्य' की 'छाया' में तुम थे कितने सुकुमार हुए।
पश्चिमी प्रभावों से विहीन भारत-संस्कृति के द्वार हुए।

युग-युग तक आते रहो याद ।
ओ वाणी के मधुमय प्रसाद !
जब कोमल-कोमल शब्दों में तुम घोल हृदय का प्यार उठे।
विश्वासों से छूकर वीणा के सातों स्वर झंकार उठे।
'तितली' के पंखों-सी सुन्दर कल्पना तुम्हारी मधुर वेष।
तुमने दी मधु की 'एक घूँट' जब हिन्दी थी 'कंकाल' शेष।
वह चली तुम्हारे मस्तक से कविता—सुरसरि की तरल धार।
तुम रहे 'इन्दु' को सदा शीश पर लिए, पी गए दुर्निवार।

भर हृदय-पात्र में विष-विषाद |
तुम सचमुच शंकर थे 'प्रसाद' ।
ओ वाणी के मधुमय प्रसाद !

•